अञ्चलगच्छीय श्री जयकेसरीसूरि भास

म. विनयसागर

सद्गुरु आचार्यों और गीतार्थप्रवरों के गुणगौरव का यशोगान और स्तुति करना यह साधुजनों का कर्तव्य है। जो कि गीत, भास, स्तुति, रास, इत्यादि के रूप में प्राप्त होते हैं। गुरुगुण-षट्पद, जिनदत्तसूरि स्तुति, साहरयण कृत जिनपतिसूरि धवल गीत, कवि भत्तउ रचित जिनपतिसूरि गीत, पहराज कृत जिनोदयसूरि गुण वर्णन, कविपल्ह कृत जिनदत्तसूरि स्तुति, नेमिचन्द्र भण्डारी रचित जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन, सोममूर्ति रचित जिनेश्वरसूरि-संयमश्री विवाह वर्णन, मेरुनन्दन रचित जिनोदयसूरि विवाहलउ आदि १२वीं शताब्दी के अनेकों कृतियाँ प्राप्त होती हैं। इसी शृंखला में अञ्चलगच्छीय श्री जयकेसरीसूरि से सम्बन्धित भास और गीत संज्ञक लघु चार रचनाएँ स्फुट पत्र में प्राप्त है। श्री जयकेसरीसूरि १५ वीं के अञ्चलगच्छीय प्रभावक आचार्य हुए हैं। श्री अञ्चलगच्छ की स्थापना आर्यरक्षितसूरि के द्वारा संवत ११६९ में हुई है। इसी आर्यरक्षितसूरि की परम्परा में श्री जयकेसरीसूरि हुए हैं। जिनकी वंशपरम्परा इस प्रकार हैं :-

आर्यरक्षितसूरि
|
जयसिंहसूरि
|
धर्मघोषसूरि
|
महेन्द्रसिंहसूरि
|
सिंहप्रभसूरि
|
अजितसिंहसूरि
|

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवेन्द्रसिंहसूरि
|
धर्मप्रभसूरि
|
सिंहतिलकसूरि
|
महेन्द्रप्रभसूरि
|
मेरुतुङ्गसूरि
|
जयकीर्तिसूरि
|
जयकेसरीसूरि

इस प्रकार आर्यरक्षितसूरि की परम्परा में बारहवें पाट पर इनका स्थान पाया जाता है ।

श्री जयकेसरीसूरि के सम्बन्ध में **प्रयोजक पार्श्व ने अञ्चलगच्छ दिग्दर्शन** नामक पुस्तक में पृष्ठ २६७ से २९८ पर विस्तार से प्रकाश डाला है । इसी पुस्तक के आधार पर प्रमुख-प्रमुख घटनाओं का यहाँ उल्लेख कर रहे हैं ।

इनका जन्म पाञ्चाल देशान्तर्गत थाना नगर में विक्रम संवत् १४६१ में हुआ । इनके पिता श्रीपाल के वंशज श्रेष्ठि देवसी थे और माता का नाम लाखणदे था । किसी पट्टावली में जन्म संवत १४६१ प्राप्त होता है तो किसी में १४६९ । इनका जन्मनाम धनराज था । माता द्वारा केसरीसिंह का स्वप्न देखने के कारण दूसरा नाम केसरी भी था । संवत १४७५ में जयकीर्तिसूरि के पास आपने दीक्षा ग्रहण की और दीक्षा नाम जयकेसरी रखा गया । संवत १४९४ में जयकीर्तिसूरि ने आपको आचार्य पद प्रदान कर जयकेसरीसूरि नाम रखा । भावसागरसूरि के मतानुसार चांपानेर नरेश गङ्गदास के आग्रह से इनको आचार्य पदवी दी गई थी । जयकेसरीसूरि भास में **रंजण गंग नरिन्द** प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। संवत १५०१ में चाम्पानेर में आपको गच्छनायक पद प्राप्त हुआ और संवत् १५४१ पोस सुदी ८ के दिन खम्भात में इनका स्वर्गवास हुआ।

चांपानेर नरेश गङ्गदास तो इनके भक्त थे ही, गङ्गदास के पुत्र जयसिंह पताई रावल भी इनका भक्त था। लावण्यचन्द्र की पट्टावली के अनुसार सुलतान अहमद (महम्मद बेगडा) भी आपके चमत्कारों से प्रभावित था। सायला के ठाकुर रूपचन्द और उनके पुत्र सामन्तसिंह ने जीवनदान पाकर जैन धर्म स्वीकार किया था। जम्बूसर निवासी श्रीमाल कवि पेथा भी आपके द्वारा प्रतिबोधित था।

आपके द्वारा विक्रम संवत् १५०१ से लेकर १५३९ तक २०० के लगभग प्रतिष्ठित मूर्तियाँ प्राप्त होती है। जयकेसरीसूरि की २ ही कृतियाँ प्राप्त होती हैं :- १. चतुर्विंशति-जिन-स्तोत्राणि और २. आदिनाथ स्तोत्र। चतुर्विंशति-जिन-स्तोत्राणि मेरे द्वारा सम्पादित होकर आर्य जयकल्याण केन्द्र, मुम्बई से विक्रम संवत २०३५ में प्रकाशित हो चुकी है। इस कृति को देखते हुए यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि जयकेसरीसूरि प्रौढ़ विद्वान थे।

उनकी गुण गाथा को प्रकट करने वाली अनेकों कृतियाँ प्राप्त हो सकती हैं। मुझे केवल चार कृतियाँ ही प्राप्त हुई, जो कि एक ही पत्र पर लिखी हुई हैं। लेखन संवत् नहीं है किन्तु लिपि को देखते हुए १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखी गई हो ऐसा प्रतीत होता है।

प्रथम कृति भास के रूप में है, जिस में श्री जीराउली पार्श्वनाथ को नमस्कार कर अञ्चलगच्छ नायक जयकेसरीसूरि के माता-पिता का नामोल्लेख है। इसी के पद्य ५ में रञ्जण गङ्ग नरिन्द्र का उल्लेख भी है। दूसरी भास नामक कृति **कवि आस** की रचित है। नगर में पधारने पर विधिपक्षीय जयकेसरीसूरि का वधावणा किया जाता है, और संघपति महिपाल जयपाल का उल्लेख भी है। तीसकी कृति गीत के नाम से है। इसके प्रणेता **हरसूर** हैं, और इसमें जयकीर्तिसूरि के पट्टधर जयकेसरीसूरि के नगर प्रवेश का वर्णन किया गया है। चौथी कृति भास नामक है। इसके प्रणेता **हरसूर** हैं, जिसमें श्राविकाएँ नूतन शृङ्गार कर जय-जयकार करती हुई, मोतियों का चौक पुराती हुई, उनका गुणगान करती हैं, आचार्य को देखकर नेत्र सफल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए हैं । इक्षु, दूध-शक्कर, के समान आचार्य-वाणी को उपमा प्रदान की गई है । आचार्य को जङ्गम गुरुओं में गोयम गणधर, शील में जम्बूकुमार, मुनीश्वरों में वज्रकुमार आदि की उपमा देते हुए गुरुगुण से पाप भी पलायन कर जाते हैं, ऐसा उल्लेख है । भक्तजनों के आल्हाद के लिए चारों लघु कृतियाँ प्रस्तुत हैं :-

अञ्चलगच्छीय श्री जयकेसरीसूरि भास

(१)

श्री जीराउलि पास पूरई रे मनची आस ।
आणीय मनि उल्लास पणमिय जिनवर पास ॥
सखि गाइसिउं ए अञ्चलगच्छ नरिंद
अईया गाइसिउंए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥१॥

लाखणदेविउं दार जाईउ सुत सविचार
धन धन राजकुमार आदरिउ सूरिपयभार ।
वंदिसिउं ए श्री जयकेसरिसूरि
अईया वंदिसिउं ए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥२॥

देवसीयसाह मल्हार, अञ्चलगच्छ सिणगार
पूरव रिषि आचार, पालइं ए निरतीचार ।
सखि गाजइ ए गणहर मुणिवर थाटि
अईया गाजइ ए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥३॥

गुरु गोयम अवयार, शासन तणउ आधार
जाणइ सयल विचार, गुरुयडि गुण भंडार ।
सखि दीपइ ए दसदिसि कीरति जास
अईया दीपई ए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥४॥

गुरु मुख पूनिम चंद, दीठइ परमाणंद
रंजण गंगनरिंद, सेव करइं सूरिंद ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सखि प्रतपउ ए अम्ह गुरु जां जगि सूर
अईया प्रतपउ ए अञ्चलगच्छ नरिंद ॥५॥

इति श्री गुरु भास

(२) कविआस प्रणीत

आज घरि घरिइं वधामणां, हरख लइ चतुर्विध संघ ए ।
आरे श्री विधिपक्ष गच्छनायक, जयवंत **जयकेसरिसूरिंद** रे ॥
मिलउ सहेली सुगुरु तणा गुण गाउ ए ।
कनक थाल मोतीडां भरि जयकेसरिसूरि वधावउ रे ॥१॥
॥ मिलउ सहेली, आंचली ॥

जिम तारायण चांदलउ, तिम मुखि अमीय झरंतू ए ।
सूरि श्रीजयकेसरिसुगुरु अम्ह तरणि परि तपंतू रे ॥ २ ॥ मिलउ सहेली ॥

सुललित वाणी सुणींजइ, श्रवणि अमीरस पीजइ रे ।
श्रीजयकेसरिसूरि तरणतारण सिरि लुंछणडां करीजइ रे ॥ ३ ॥ मिलउ सहेली ॥

आस भणति अईसा सुगुरु तुम्ह जयउ संघपति **आसधीर** तनू रे ।
संघपति **महिपाल जयपाल**, जयकेसरिसूरि प्रसन्न रे ॥ ४ ॥ मिलउ सहेली ॥

(इति) श्री गुरु भास

(३) हरसूर प्रणीत

ऊलट अंगि अपार कामिनि करउ सिणगार
मोतीय थाल भरी वधावउजी ।
सही ए अम्ह सुहगुरु आईला श्रीजयकेसरिसूरी । सही ए. ॥ १ ॥ आ. ।

अहव सूहव आवउ माणिक चउक चूरावउ ।
गच्छनायक गुण गाउजी । सही ए. ॥ २ ॥
जयकित्तिसूरि पाटोधर कलि गोयम अवतार ।
तरणतारण पाय सेवउजी । सही ए. ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरसूर भणइ सुवचन **साह देवसी** तन ।
धन संघ प्रसन्नूजी । सहीए. ॥ ४ ॥

(इति) श्री गुरु गीत

(४)

चालि सही गुरु वंदीइ पहिरी नव सिणसार ।
गछनरेसर भेटीइ, जिम हुई जय जयकार ॥
वेगि वधावउ रे सुंदरी, मोती चउक पूरेवि ।
सूरीसर जयकेसरी, अविहड भाव धरेवि ॥ १ ॥ वगि वधावउ रे।

जई गुरु दीठा आपणा, चतुर पणइ चउसाल ।
सफल हूंया अम्ह लोयणा आज सफलिउ सुरसाल ॥ २ ॥ वेगि. ।

स्वाद पणइ जिसी सेलडी, जाणे साकर दूध ।
कईहो मोहणवेलडी, वाणी अमी यति सूध ॥ ३ ॥ वेगि. ।

सरस सुकोमल सीयली, सुणतां सविहुं सुहाई ।
वाणी अम्ह गुरु केतली, ऊपम कहणि न जाइ ॥ ४ ॥ वेगि. ।

सारद ससिकर निरमलउ, खीरोदधि सम वान ।
दीपइ दहदिसि ऊजलु, जगि जस मेरु समान ॥ ५ ॥ वेगि. ।

जंगम गोयम गणहरु, सीलिइं जंबुकुमार ।
सोहगवई वरमुणीसरु, विद्या वइरकुमार ॥ ६ ॥ वेगि. ।

जे गुण गाइं गुरु तणा, आणी हृदय विवेक ।
पातक जाइं तेह तणां, पामइं भोग अनेक ॥ ७ ॥ वेगि. ।

इति श्री पूज्य भास

प्राकृत भारती अकादमी
१३-अे, मेन मालवीयनगर, जयपुर-३०२०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फ्रॉंस में जैन धर्म व साहित्य

स्वर्गीय प्रोफ़ेसर डाक्टर श्रीमति कौलेट काइया का योगदान

१५-१-१९२१ - १५-१-२००७

श्रद्धाञ्जलि

नलिनी बलवीर

फ्रॉंस में जैन धर्म प्रचलित धर्म नहीं है। भारतीय प्रवासियों की संख्या यहा सीमित है और उनमें जैनियों का भाग कम है। इंगलैंड और अमेरिका की तरह अभी तक यहाँ जैन मन्दिर भी नहीं हैं। पर विशेषज्ञों के कृतित्व के कारण जैन धर्म और साहित्य भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग माना जाता है और विश्वविद्यालयों में उनका अध्ययन और अध्यापन होता है। बीसवीं शती के आरम्भ में फ्रांसीसी विद्वान गेरिनो (Guérinot) ने इस विषय पर संशोधनकिया की। तत्कालीन पश्चिमी देशों के गेरिनो समान विद्वानों ने आचार्य श्रीविजयधर्मसूरि (1868-1922) के साथ पत्रव्यवहार किया था[1]। पिछली शती के विश्वविख्यात भारतीयज्ञ इण्डोलोजिस्ट प्रोफ़ेसर लुई रनु (Louis Renou, 1896-1966) जैन धर्म व साहित्य के विशेषज्ञ नहीं थे फिर भी उनका जैनिज़्म *(Jainism)* नामका लेख आज भी प्रशंसनीय है[2]। भारत के यात्रा के समय १९४८ प्रोफ़ेसर रनु की तेरापन्थी आचार्य श्रीतुलसी (1914-1997) से भेंट हुई। इन आचार्य के व्यक्तित्व और तेरापन्थ संघव्यवस्था से बहुत प्रभावित होकर प्रोफ़ेसर रनु ने रिपोर्ट जैसा एक लेख प्रकाशित किया जो पश्चिम में तेरापन्थ के विषय पर सब से प्रथम था[3]।

1. A.J. Sunavala, *Vijaya Dharma Suri. His Life and Work*, Cambridge, 1922; Colette Caillat & Nalini Balbir, Jaina Bibliography. Books and Papers published in French or by French scholars from 1906 to 1981, *Sambodhi* 10, April 1981, pp. 1-41.
2. In : *Religions of Ancient India*, London, 1953; reprint, Delhi, Munshiram Manoharlal, 1971.
3. Louis Renou, Une secte religieuse dans l'Inde contemporaine, *Etudes*, 268, 1951, pp. 343-351; English version: A Religious Sect in Contemporary India, *Eur-Asia*, Calcutta, 6, 1-2, January February 1952, pp. 1663-1666 and 1675.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रोफ़ेसर डाक्टर कौलेट काइया (Colette Caillat) ने पाश्चात्य परम्परा को सजीव रखा और अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से निरन्तर विकसित किया। गुणग्राह्यता तथा जैन साहित्योपासना दोनों ही दृष्टियों से श्रीमती काइया का जीवन आदर्श विदुषी और महिला का जीवन रहा है। उनका जन्म पेरिस के पास एक छोटे शहर में १५ जनवरी १९२१ में हुआ और अपनी छियासवी वर्षगांठ के दिन १५ जनवरी २००७ में उनका देहावसान हो गया।

उनके माता पिता दोनों सरकारी नौकरी करते थे। उनका पूरा विश्वास था कि लडकियों का जीवन भी वैयक्तिक वेतन के बिना नहीं चल सकता। नियमित कार्यवाही से ही स्त्री को स्वतन्त्रता मिल सकती है। आरम्भ में श्रीमती काईया ने सोर्बोन विश्वविद्यालय में लैटिन व ग्रीक योरोपीय शास्त्रीय भाषाओं का अध्ययन किया। इन विषयों की उच्चतम परीक्षाओं में सफलता के बाद उन्होंने माध्यमिक शिक्षालयों में अध्यापन किया। इसी बीच श्रीमती काइया का विवाह एक भौतिक वैज्ञानिक से हुआ।

पढाते-पढाते उन्होंने सोर्बोन विश्वविद्यालय में संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं का अध्ययन प्रारंभ किया। इस समय लैटिन व ग्रीक भाषाओं के विद्यार्थियों को ज्ञान हुआ कि इन भाषाओं का संस्कृत से पास का सम्बन्ध है। परिणामस्वरूप वे भी भारतीय शास्त्रीय भाषा संस्कृत की ओर आकृष्ट हुए। यद्यपि ऐसे विद्यार्थियों की संख्या सीमित रही है। प्रोफ़ेसर लुइ रनु और प्रोफ़ेसर जूल ब्लोक (Jules Bloch, 1880-1953) श्रीमती काइया के दो मुख्य गुरु थे। प्रोफ़ेसर ब्लोक के विद्यार्थी न केवल संस्कृत बल्कि पालि-प्राकृत तथा मराठी भाषाएं भी सीखते थे। इसी प्रकार श्रीमती काइया की रुचि भी भारतीय भाषाओं में बढती गई। पाली-प्राकृत नामव्युत्पत्ति के विषय पर उन्होंने संशोधन प्रारम्भ किया। किन्तु जैन धर्म से परिचित बिना प्राकृत साहित्य कौन पढ सकता है। उस समय फ्राँस में जैन धर्म का विशेषज्ञ न होने के कारण प्रोफेसर रनु ने श्रीमती काइया को हैमबुर्ग विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर वाल्टर शूब्रिंग (Walther Schubring, 1881-1969) के पास अध्ययनार्थ भेज दिया। प्रोफ़ेसर शूब्रिंग जैन आगम साहित्य और प्राकृत विद्या के शीर्षस्थ विद्वान थे। विशेषतः वे आचाराङ्गसूत्र, सूत्रकृताङ्गसूत्र तथा छेदसूत्रों का अध्ययन, अनुवाद व सम्पादन करते थे। हैमबुर्ग में ही श्रीमती काइया प्रोफ़ेसर अल्स्दोर्फ (Ludwig Alsdorf, 1904-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1978) के सम्पर्क में भी आयीं। उन्हीं की प्रेरणा से वे क्रिटिकल् पालि डिक्शनरी के काम में भी सहयोग देने लगीं। सन् १९६५ में उनका डी. लिट्. उपाधि का निबन्ध पूरा हो गया था और फ्रांसीसी भाषा में पुस्तकरूपमें छपा था। छेदसूत्रों के आधार पर (विशेषतः व्यवहारसूत्र एवं भाष्य के आधार पर) जैन साधुसंघ की व्यवस्था का वर्णन बडी स्पष्टता से इस पुस्तक में दिया गया है। और विस्तार से दस प्रायश्चित्तों का गहन विश्लेषण किया गया है। इस अपूर्व अध्ययन की ख्याति के कारण श्रीमती काइया जैन धर्म व साहित्य की विशेषज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित हुई। सन् १९७५ में इस मूलभूत ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृत विद्यामन्दिर अहमदाबाद की ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ[4]। व्यवहारसूत्र के अध्याय का फ्राँसीसी अनुवाद इस ग्रन्थ का परिशिष्ट माना जा सकता है[5]। उनका अन्य प्रमुख ग्रन्थ 'जैन कौस्मोलोजी' जैन धर्म और साहित्य क्षेत्र की अद्वितीय कृति है[6]। श्रीमती काइया ने श्वेताम्बर आगमों के प्रकीर्णक ग्रन्थों के विषय में भी बहुमूल्य योगदान दिया। उन्होंने चन्दावेज्झय प्रकीर्णक का भी सम्पादन, अनुवाद एवं भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया[7]। इसके अतिरिक्त प्रकीर्णकों में विशेषतया वर्णित सल्लेखना तथा मरणसमाधि पर उन्होंने विविध शोधपत्र प्रकाशित किए[8]।

---

4. C. Caillat, *Atonements in the Ancient Ritual of the Jaina Monks*, Ahmedabad, 1975.
5. In : W. Schubring, C. Caillat, *Drei Chedasūtras des Jaina-Kanons, Āyāradasāo, Vavahāra, Nisīha*, Hamburg, 1966.
6. C. Caillat, Ravi Kumar, *Jain Cosmology*, New Delhi, 1981; new edition, Ravi Kumar Publisher, New Delhi, 2004.
7. *Candāvejjhaya*, La Prunelle-Cible. Paris, De Boccard, 1971.
8. Fasting unto Death according to Āyāranga-sutta and to some Paiṇṇas, *Mahāvīra and his Teachings* (ed. A.N. Upadhye *et alii*), Bombay, 1977, pp. 113-118; Interpolations in a Jain Pamphlet or the Emegence of one more Āturapratyākhyāna, *Wiener Zeistschrift für die Kunde Südasiens*, 36, 1992, pp. 35-44; On the Composition of the Śvetāmbara Tract *Maraṇavibhatti/Maraṇasamāhi-Paṇṇayaṃ*, *Jain Studies*, Delhi, Motilal Banarsidass, 2008; etc. For a bibliography of C. Caillat's works, see *Bulletin d'Etudes Indiennes* 22-23, 2004-2005, published in 2007 and *Indologica Taurinensia* (forthcoming), or contact - nalini.balbir@wanadoo.fr

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन् १९६२-१९६३ में अनेक व्यक्तियों व भारत सरकार के उत्साहन और सहायता से श्रीमती काइया को भारत यात्रा का सर्वप्रथम अवसर प्राप्त हुआ। तब से ही वे भारत के जैन धर्म के प्रमुख विद्वानों के सम्पर्क में आयीं। अहमदाबाद में लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के निदेशक पण्डित दलसुखभाई मालवणिया (1910-2000) और उनके परिवार के साथ श्रीमती काइया की घनिष्ठता हो गई। उनके वात्सल्य के वातावरण में श्रीमती काइया ने पूर्णतया लाभ उठाया। प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी संघवी (1880-1978) की सरलता और गम्भीरता से भी वे अत्यन्त प्रभावित हुई। प्रोफेसर हरिवल्लभ भायाणी (1917-2000) के साथ प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं पर विशेष चर्चा होती। आगमप्रभाकर आचार्य श्रीपुण्यविजयजी (1895-1971) के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का उन पर अत्यन्त प्रभाव पडा। उन्होंने फ्राँसीसी पाठको के लिए मुनिजी की जीवनकथा का वर्णन किया। अन्तिमवर्षों में आचार्य श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी महाराज से भेंट होने के बाद से उनका दर्शन पाना श्रीमती काइया के लिए अनिवार्य था। दिगम्बर विद्वानों के साथ भी उनका बहुत अच्छा सम्पर्क रहा। वे डाक्टर आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये (1906-1975) को अपना भारतीय गुरु मानती थीं। उन्हीं के साथ रामसिंहकृत दोहापाहुड तथा जोइन्दुकृत परमात्मप्रकाश पढकर श्रीमती काइया ने अपभ्रंश के इन दोनों पावन ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित किया[९]। सन् १९८१ में उन्होंने भारतवर्ष के बाहर सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन का आयोजन किया और पण्डित दलसुखभाई माल्वणिया तथा प्रोफेसर नथमल टाटिया को आमन्त्रित किया[10]।

सन् १९४२ से १९५० तक श्रीमती काइया राष्ट्रीय वैज्ञानिक अनुसन्धान केन्द्र के अधीन गवेषणा करती रहीं और तत्पश्चात् उनका सारा बौद्धिक जीवन विश्वविद्यालय की सेवा में अर्पित हो गया। पहले वे ल्यों (Lyon) नगर

9. The Offering of Distics (*Dohāpāhuḍa*) : *Sambodhi* 5, 1976, pp. 176-199; *Lumière de l' Absolu [*Yogindu's *Paramātmaprakāśa]*, Paris, Payot, 1999.

10. *Proceedings of the International Symposium on Jaina Canonical and Narrative Literature*, Torino, 1983.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के विश्वविद्यालय में १९६०-६६ संस्कृत और तुलनात्मक व्याकरण की शिक्षा देती थीं। सन् १९६६ में प्रोफ़ेसर् रनु के आकस्मिक निधन के बाद वे सोर्बोन विश्वविद्यालय में भारतविद्या की प्रोफ़ेसर नियुक्त हुईं और १९८९ तक सेवानिवृत्त होने के समय तक इस पद पर बनी रहीं। दर्जनों विद्यार्थियों को उन्होंने भारतीय संस्कृति और पालि-प्राकृत भाषाओं की शिक्षा दी और भारतीयपरता का पथप्रदर्शन किया। विविध छात्रों को पी.एच.डी. की शोध उपाधि के लिए निर्देशन किया।

प्रोफ़ेसोर् श्रीमती काइया ने विश्व के विविध धर्मसम्बन्धी प्रकाशनों मे अनेक निबन्धों और प्रकृतिविषयक जैन घोषणा के अनुवाद से फ़्राँस की सामान्य जनता को जैन धर्म से अवगत किया। उस क्षेत्र की अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ होने के नाते फ़्राँस के बाहर भी प्रकाशित विश्वकोशों और सामान्य ग्रन्थों में उन्होंने अनेक लेख प्रकाशित किए। उदाहरणतः देखिए कौलेट काइया, ए. एन. उपाध्ये और बाल पाटिल द्वारा प्रकाशित जैनिज़्म् (*Jainism;* देहली १९७४-७५)

भारत विद्या के विविध विषयो पर प्रकाशित पुस्तकों की समर्थक और उदारतापूर्ण समालोचना करना श्रीमती काइया के कृतित्व का महत्वपूर्ण भाग था। फ़्राँस की एसियाटिक् सोसाइटी की पत्रिका में (*Journal Asiatique*) उन्होंने नियमित रूप से महत्वपूर्ण ग्रन्थसूचियों के संकलन प्रकाशित किए। जर्मन विशेषज्ञ प्रोफ़ेसर वाल्टर शूब्रिंग और भारतीय विद्वान मुनि पुण्यविजयजी के देहावसान पर उन्होंने महानुभावों पर मार्मिक लेख छापे।

विद्वत्ता, कर्तव्यपरायणता और सरल स्वभाव के कारण श्रीमती काइया शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में प्रसिद्ध हो गयीं। भारत के जैन संस्थानों और विदेशी संस्थानों में सम्मान पुरस्कारों से अलंकृत हुईं।

श्रीमती काइया का जीवन और अथक शोध कृतित्व जैन धर्म और साहित्य के ही नहीं अपितु विश्वसेवापरक स्वभाव मानवता के निरन्तर आदर्श रहेंगे।

C/o. सोर्बेन नुवेल विश्वविद्यालय
पेरिस, फ़्राँस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org